अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

स्वतंत्रता दिवस की शुभकामनाएं

वर्ष : 52 अंक : 8 श्रावण-भाद्रपद वि.सं. 2082 अगस्त, 2025 पृष्ठ-28 RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x

समिति में अंतरराष्ट्रीय आयोजन

रा राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति से गत 5 जुलाई की रात दुनिया के तीन शहर नई डिजिटल प्रौद्योगिकी के जरिए एक दूसरे से जुड़े और अपने-अपने लोक संगीत से ब्रह्मांड को गूंजा दिया। पश्चिम जर्मनी के शहर बोहुम के तारामंडल की शताब्दी का इससे उम्दा जश्न और क्या हो सकता था! सौ साल पहले वहां तारामंडल (प्लेनेटेरियम) की प्रोजेक्शन प्रौद्योगिकी का आविष्कार हुआ था जिसने ब्रह्मांड को देखने का तरीका बदल दिया। इस अद्भुत नवाचार की सौवीं वर्षगांठ मनाने के लिए यह आयोजन हुआ।

इस आयोजन में जर्मनी के बोहुम, भारत के जयपुर और मिश्र के अलेक्जेंड्रिया शहरों के बीच लाइव संगीत संवाद 'The Sound Of Universe' हुआ, जिसमें भारत का प्रतिनिधित्व राजस्थान के मांगणियार लोक कलाकारों ने राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के सभागार में अपनी महफिल जमा कर किया।

इन लोक कलाकारों ने इस अंतरराष्ट्रीय इवेंट के लिए तीन दिन तक समिति में आवास करते हुए खूब रिहर्सल किए जिसका शानदार परिणाम पश्चिम के कलाकारों के साथ हुई संगत में नज़र आया। तीन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विविधता वाले शहरों के कलाकारों ने ऑनलाइन जुड़ कर संगीत की एक ऐसी शृंखला बनाई जो मानव संस्कृतियों की विविधता और ब्रह्मांड की सार्वभौमिकता दोनों को प्रतिबिंबित करती थी।

बोहुम, अलेक्जेंड्रिया और जयपुर के खगोलवेत्ताओं ने इस अवसर पर विभिन्न ब्रह्मांडीय घटनाओं की चर्चा भी की। जयपुर से अमरकंटक के केंद्रीय विश्वविद्यालय के प्रोफेसर आलोक पांड्या ने ब्रह्मांडीय घटना 'पल्सार' की जानकारी देते हुए उन्हें संगीत की तरह एक लय में घड़कते हुए बताया। 'पल्सार' वास्तव में वे अल्ट्रा हाई एनर्जी कॉस्मिक किरणों के स्रोत हैं।

यह कार्यक्रम विज्ञान, दर्शन और कला का अद्भुत संयोजन था जिसने पारंपरिकता और आधुनिकत को भी जोड़ा गया। तीनों शहरों का परिचयात्मक प्रदर्शन भी हुआ।

जयपुर में इस कार्यक्रम की धुरी थे जाज़म फाउंडेशन के विनोद जोशी, जो लोक कलाकारों तथा उनके वाद्यों की विरासत के संरक्षण में लंबे समय से लगे हुए हैं। ❑

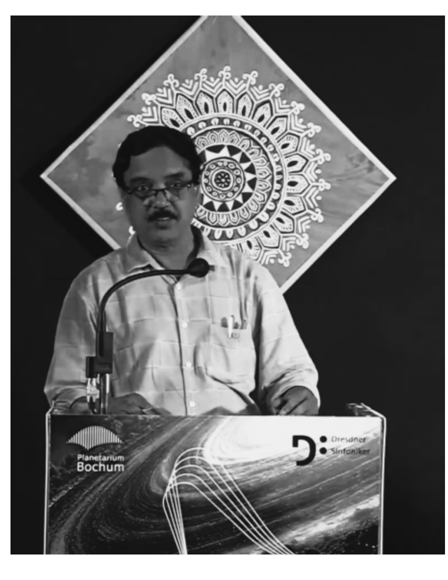

वाणी

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

- सुभाषित

केवल वे लोग जिनकी चेतना बहुत कम है, वे सोचते हैं कि यह अपना है (हमारी जाति का है, हमारे धर्म का है) और दूसरा पराया है। जिन लोगों की उदार चेतना हैं वे समस्त विश्व को अपना परिवार मानते हैं।

समानो मन्त्र: समिति: समानी समानं मन: सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये व: समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूति: समाना हृदयानि व:।
समानमस्तु वो मनो यथा व: सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : 52 अंक : 8 श्रावण-भाद्रपद वि.सं. 2082 अगस्त, 2025 मूल्य : पचास रुपये

क्र म

वाणी

3. सुभाषित

संपादकीय

5. मेहनत और प्रतिभा का मेल

लेख

7. आयातित चिकित्सक बनाम देशी चिकित्सक **– डॉ. विवेक एस.अग्रवाल**

नज़रिया

9. स्मार्ट फोन ने वर्तमान काल को असामाजिक सदी बनाया **– डेरेक थॉम्पसन**

लेख

12. हाइपर कनेक्टेड दुनिया में अकेलेपन की महामारी **– भवानी शंकर नायक**

अंतरिक्ष

14. अंतरिक्ष की खोज में भारत का बड़ा कदम शुभांशु शुक्ला ने अंतर्राष्ट्रीय स्पेस स्टेशन में गुजारे दो हफ्ते

लेख

16. कश्मीर के लोकसभा चुनाव में मेरा पहला वोट **– फरहीन फरीद**

19. संभावनाओं से भरी दुनिया का समय आ गया है **– पीटर डायमेंडिस – स्टीवन कोटलर**

स्मरण

21. गांधी के पारस स्पर्श से महिलाओं ने अपना वजूद बनाया **– वर्षादास**

लेख

24. कला शिक्षण जरूरी **– डॉ.अन्नपूर्णा शुक्ला**

आलेख

25. अब वे बिरछ कहां जिन कर छाँह गंभीर! **– प्रीति प्रसाद, सत्यजीत मजूमदार**

27. पर्यावरण शिक्षण- समिति की पहल

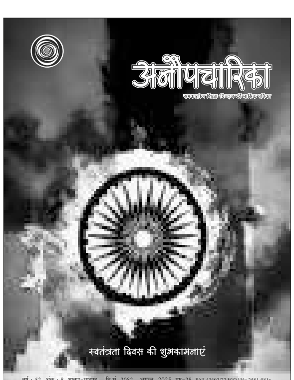

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर-302004
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com
www.raea.in

संपादक :
राजेन्द्र बोड़ा
प्रबंध संपादक :
दिलीप शर्मा

संपादकीय

मेहनत और प्रतिभा का मेल

मानव जीवन में एक प्रतिभा होती है और दूसरी मेहनत। प्रतिभा जन्मजात होती है। उसे सिखाया नहीं जा सकता, उसे केवल निखारा जा सकता है या सुप्त अवस्था से जाग्रत अवस्था में लाया जा सकता है। दूसरी होती है मेहनत, जिसे पाया जा सकता है। साधा जा सकता है। प्रतिभा से भी सफलता मिलती है और मेहनत से भी। यदि प्रतिभा न हो तो भी मनुष्य कड़ी मेहनत करके वह सफलता पा सकता है जो प्रतिभावान को सहज हीमिल जाती है। किन्तु यदि कोई प्रतिभावान व्यक्ति मेहनत करे तो वह जो सफलता पायेगा वह अदबूत होगी। इसलिए कह सकते हैं कि प्रतिभा का विकल्प मेहनत होती है मगर मेहनत का कोई विकल्प नहीं होता।

एक प्रख्यात मनोवैज्ञानिक, प्रोफ़ेसर के. एंडर्स एरिक्सन और उनके दो सहयोगियों ने 1990 के दशक की शुरुआत में बर्लिन की एलीट एकेडमी ऑफ़ म्यूज़िक में एक अध्ययन किया। उन्होंने स्कूल के वायलिन वादकों को तीन समूहों में विभाजित किया। पहले समूह में बेहद सफल 'सितारे' शामिल थे, जिनमें विश्व स्तरीय वायलिन वादक बनने की क्षमता थी। दूसरी श्रेणी में वे थे जो केवल 'अच्छे' थे, और अंतिम श्रेणी में वे छात्र थे जिनके कभी पेशेवर रूप से वायलिन बजाने की संभावना नहीं थी और जो सार्वजनिक स्कूलों में संगीत शिक्षक बनने का इरादा रखते थे।

प्रोफ़ेसर एरिक्सन ने पाया कि तीनों समूहों ने एक ही उम्र में – लगभग पांच साल की उम्र में – वायलिन बजाना सीखना शुरू किया था। तीनों समूहों ने लगभग एक ही समय तक – लगभग दो से तीन घंटे प्रति सप्ताह – आठ साल की उम्र तक रियाज किया। लेकिन फिर अंतर उभरने लगे – सबसे अच्छे छात्र बाकी सभी की तुलना में ज़्यादा रियाज करते थे! बारह वर्ष की आयु तक, पहला समूह प्रति सप्ताह आठ घंटे रियाज कर रहा था और बीस वर्ष की आयु तक प्रति सप्ताह तीस घंटे रियाज तक पहुंच गया था। सभी ने एकनिष्ठ और उद्देश्यपूर्ण रूप से अपने 'वाद्ययंत्रों को बेहतर बनने के इरादे से बजाते हुए'।

अध्ययन में पाया गया कि शीर्ष छात्रों ने बीस वर्ष की आयु तक कुल मिलाकर 10,000 घंटे रियाज किया था, दूसरे समूह ने 8,000 घंटे और अंतिम श्रेणी ने 4,000 घंटे। शौकिया वायलिन वादकों ने और भी कम अभ्यास किया – केवल 2000 घंटे।

प्रो. एरिक्सन ने पियानोवादकों के साथ अपना अध्ययन दोहराया और वही परिणाम पाया। बाद में, संगीतकारों, बास्केटबॉल खिलाड़ियों, कथा लेखकों, आइस-स्केटर्स और शतरंज खिलाड़ियों के बीच भी इसी तरह के अध्ययन किए गए।

इन विविध गतिविधियों में किसी भी क्षेत्र में कम समय में विश्व स्तरीय विशेषज्ञता हासिल नहीं की गई। यकीनन अब तक का सबसे महान संगीत प्रतिभावान मोजार्ट भी

10,000 घंटे रियाज करने के बाद ही अपनी गति पकड़ पाए। इसका अर्थ हुआ मेहनत का कोई पर्याय नहीं। मेहनत से आसमां छूआ जा सकता है।

मेहनत अर्थात अभ्यास वह चीज़ नहीं है जो कोई एक बार अच्छे हो जाने के बाद करते हैं। बल्कि वह चीज़ जो कोई करता है, वही उसको अच्छा बनाती है।
संगीत प्रेमी यह जानते हैं कि बेहद लोकप्रिय रॉक बैंड, बीटल्स ने दिन में घंटों अभ्यास करके अपने क्षेत्र में उत्कृष्टता हासिल की, खासकर हैम्बर्ग में, जहां उन्होंने 1961 और 1964 के दरम्यान नाइट क्लबों में परफॉर्म किया। उनके समकालीन अन्य रॉक बैंड उनके जितनी सफलता नहीं अर्जित कर पाए क्योंकि वे वैसी मेहनत नहीं कर पाए। बीटल्स द्वारा किए गए कठोर अभ्यास ने उन्हें औरों से अलग बनाया।

हालांकि सफलता की परिभाषा हर व्यक्ति के लिए अलग हो सकती है, परंतु उसके मूल में एक बात स्पष्ट रूप से दिखाई देती है – प्रयास। समाज में अक्सर यह धारणा बनी रहती है कि केवल वही व्यक्ति सफलता पा सकता है, जो प्रतिभाशाली हो। लेकिन वास्तविकता इससे इतर है। इतिहास और वर्तमान दोनों ऐसे असंख्य उदाहरणों से भरे पड़े हैं जहाँ औसत योग्यता वाले लोगों ने निरंतर मेहनत, अनुशासन और संकल्प के बल पर असाधारण सफलता प्राप्त की है। मेहनत, प्रतिबद्धता और लगन से कोई भी व्यक्ति, चाहे उसमें प्राकृतिक प्रतिभा हो या न हो, बड़ी सफलता पा सकता है।

प्रतिभा उस स्वाभाविक क्षमता को कहा जाता है जो किसी व्यक्ति में जन्म से होती है। यह किसी कार्य को जल्दी और आसानी से सीखने या समझने की शक्ति होती है। वहीं मेहनत एक ऐसा गुण है जिसे कोई भी व्यक्ति अपने आत्म–नियंत्रण और संकल्प के साथ विकसित कर सकता है। प्रतिभा सीमित व्यक्तियों के पास होती है, लेकिन मेहनत का मार्ग हर किसी के लिए खुला होता है।

प्रतिभा भले ही आरंभिक बढ़त दे दे, लेकिन यदि मेहनत और अनुशासन से उसका साथ न दिया जाए तो वह बहुत दूर तक नहीं ले जा सकती। वहीं मेहनती व्यक्ति अपने अनुभवों से सीखता है, गलतियों से सुधार करता है, और अंततः श्रेष्ठता की ऊँचाइयों तक पहुँच जाता है।

मनोविज्ञान भी इस विचार का समर्थन करता है कि कठिन परिश्रम और मानसिक लचीलापन व्यक्ति की सफलता में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। व्यक्ति अपनी क्षमताओं को मेहनत और सीखने की इच्छाशक्ति से बढ़ा सकता है। जिन लोगों में यह मानसिकता होती है, वे असफलताओं को एक अवसर की तरह लेते हैं और लगातार सुधार की ओर बढ़ते हैं।

यह कहना भी गलत होगा कि प्रतिभा का कोई मूल्य नहीं होता। प्रतिभा एक बोनस की तरह है जो अगर मेहनत से जोड़ी जाए तो परिणाम असाधारण होते हैं। लेकिन मेहनत का साथ न होने पर प्रतिभा निष्फल रह जाती है। प्रतिभा महत्त्वपूर्ण तो है, परंतु उसकी तुलना में मेहनत कहीं अधिक प्रभावशाली और सर्वसुलभ साधन है। कह सकते हैं कि मेहनत की जाए तो प्रतिभा न होने पर भी सफलता पाई जा सकती है। इसलिए शिक्षा खुद पर विश्वास करना, निरंतर प्रयास करना और कभी हार न मानना सिखाती है। वही लोग इतिहास में अमर होते हैं जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी प्रयास करना नहीं छोड़ा। ❑

आयातित चिकित्सक बनाम देशी चिकित्सक

विदेशों से डॉक्टरी की पढ़ाई करके आने वालों के व्यावहारिक चिकित्सकीय ज्ञान पर यह आलेख बेचैन करने वाले कुछ सवाल उठा रहा है। सं.

डॉ. विवेक एस. अग्रवाल

पिछले कई वर्षों से विदेशों में पढ़ कर लगभग 15,000 चिकित्सक प्रेक्टिस करने के लिए भारत लौट रहे हैं। दुनिया के अनेक छोटे-छोटे देशों में मेडिकल शिक्षा उन्हें कमाई का एक जरिया डे रही है। इसमें पूर्व सोवियत संघ के विघटन से बने यूक्रेन, जॉर्जिया, उज्बेकिस्तान, कज़ाकिस्तान जैसे देशों के साथ साथ चीन, सूडान, यूगांडा, मॉरिशस, नेपाल जैसे देश बड़ी संख्या में और पश्चिम के बड़े देशों की अपेक्षा कम लागत पर चिकित्सा स्नातक तैयार कर रहे हैं।

मेडिकल शिक्षा की अर्थव्यवस्था कितनी बड़ी है इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि पूर्व सोवियत संघ के छोटे-छोटे देशों में 10 से 15 तक मेडिकल कॉलेज हैं और और उनमें आधे से एक तिहाई तक छात्र भारतीय हैं। एक मोटे अनुमान के अनुसार विगत वर्षों में लगभग 30,000 छात्र इन छोटे देशों में जाकर चिकित्सा स्नातक के पाठ्यक्रम का हिस्सा बने हैं। इन देशों से डिग्रियां लेकर आने वालों को भारत में प्रैक्टिस करने के लिए साल में दो बार आयोजित होने वाली 'फॉरेन मेडिकल ग्रैजुएट एग्जामिनेशन' परीक्षा में कंप्यूटर पर 300 ऑब्जेक्टिव टाइप प्रश्नों के जवाब देने होते है। इस परीक्षा में मात्र 50 फीसदी अंक पाने वाला विदेशी स्नातक किसी भी राज्य की मेडिकल कॉन्सिल मैं पंजीकरण के योग्य हो जाता है। इस परीक्षा में किसी भी प्रश्न के गलत होने पर निगेटिव अंक भी नहीं दिए जाते हैं। यानी, कक्षा में पढ़े लिखे अथवा किताबी ज्ञान के आधार पर विदेशों से स्नातक हुए चिकित्सक सीधे मरीज को इलाज देने के लिए योग्य करार दे दिए जाते हैं।

विदेशी डिग्रियां लिये यह चिकित्सक कठिन परिश्रम एवं मरीजों के साथ प्रायोगिक अनुभव रखने वाले भारतीय चिकित्सा स्नातकों के बराबर हो जाते हैं जो स्नातकोत्तर भर्ती को भी प्रभावित करते है। विदेशों में डाक्टरी पढ़ने वाले छात्रों की रणनीति यह होती है की वे परीक्षा उत्तीर्ण कर किसी भी मेडिकल कॉलेज से इंटर्नशिप पूर्ण करते हैं और तत्पश्चात तीन वर्ष सरकारी नौकरी में व्यतीत कर बोनस अंकों के साथ नीट प्रीपीजी परीक्षा के माध्यम से स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में अपना स्थान बना लेते हैं। इससे मरीजों के साथ गहन

कार्य करने वाले स्थानीय चिकित्सकों को अनावश्यक रूप से प्रतिस्पर्धा में गुजरना होता है।

उल्लेखनीय है कि इन छोटे देशों के मेडिकल कॉलेजों में छात्रों को मरीज के साथ बहुत ही सीमित अथवा नगण्य प्रायोगिक अनुभव दिया जाता है। मारिशस और नेपाल जैसे कुछ देशों के अपवाद को छोड़ इस बाबत वहाँ के स्थानीय कानून के साथ साथ भाषा भी बहुत बड़ा अवरोध साबित होती है।

विदेशी मेडिकल कॉलेज से पढ़कर आए छात्रों में अपेक्षाकृत सैद्धांतिक ज्ञान अधिक होता है क्योंकि वहां संपूर्ण पाठ्यक्रम अधिकांशत: कक्षा में बैठाकर कंप्यूटर, एआई, ऐनिमेशन इत्यादि संसाधनों से पूर्ण करवाया जाता है।

चिकित्सकीय ज्ञान में प्रायोगिक पक्ष को सैद्धांतिक पक्ष की अपेक्षा सदैव अधिक महत्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि हर मरीज अलग होता है, हर बीमारी की जटिलता अलग होती है और वह हर बार नए लक्षणों के साथ प्रस्तुत होती है। ऐसे में मात्र सैद्धांतिक ज्ञान से बनी स्टैंडर्ड ऑपरेटिंग प्रैक्टीसेस (डजझ) के द्वारा मरीज का तर्कसंगत तरीके से इलाज नहीं किया जा सकता। अनेकानेक बार यह भी देखा गया है की ये आयातित चिकित्सक मरीज को इंजेक्शन लगाने में भी सक्षम नहीं होते और साथ ही मरीज की सामने प्रस्तुत अवस्था के आधार पर इलाज को परिवर्तित भी नहीं कर पाते हैं। इसका खामियाजा मरीज को भी उठाना पड़ता है।

विडंबना तो यह है की बिना प्रायोगिक ज्ञान वाले ये चिकित्सक कम वेतन पर उपलब्ध हो जाते हैं, परिणामस्वरूप निजी चिकित्सालयों द्वारा इनकी तैनाती गहन चिकित्सा इकाई जैसे महत्वपूर्ण इन स्थलों पर भी कर दी जाती हैं।

विगत 10 वर्षों में सरकारी पहल पर हर जिले में न्यूनतम एक मेडिकल कॉलेज प्रारंभ करने की कवायद की जा रही है। इस सकारात्मक पहल का भी एक पक्ष यह कहते हुए विरोध करता है कि संचालन हेतु उपयुक्त संकाय सदस्य उपलब्ध नहीं है या फिर उनकी गुणवत्ता को लेकर प्रश्न खड़े किए जाते हैं। विरोध करने वालों में कुछ पक्ष इन सरकारी मेडिकल कॉलेज के स्नातकों की गुणवत्ता को लेकर भी आशंकाएं जताते रहते हैं, लेकिन यही पक्ष बिना प्रायोगिक ज्ञान के विदेशों से आयातित चिकित्सकों की गुणवत्ता पर कहीं भी प्रश्न चिन्ह नहीं खड़े करता क्योंकि उस आयात के बहाने कम लागत पर उन्हें चिकित्सक उपलब्ध हो जाते हैं।

केंद्र सरकार की इस पहल के तहत संकाय सदस्यों की आपूर्ति हेतु वर्षों से सरकारी चिकित्सा सेवारत चिकित्सकों को कार्य करने हेतु विकल्प प्रदान करें अवसर दिए जा रहे हैं जो कि पूर्णतया तार्किक एवं उचित है। हो सकता है, इन सेवारत चिकित्सकों के पास शिक्षण का अनुभव नहीं हो किंतु सरकारी सेवा में रहते हुए प्रतिदिन सैकड़ों मरीजों के भार से उत्पन्न गहन समझ उनकी पृष्ठभूमि में रहती है। उस समझ के रहते ये अनुभवी चिकित्सक विद्यार्थियों को सम्यक ज्ञान देने की ऐसी स्थिति में होते हैं और मरीजों को स्पष्टता से व्यवहार कर सकते हैं एवं उन्हें इलाज की बारीकियों को समझा पाते हैं। शायद हम घर का जोगी जोगणा आन गांव का सिद्ध वाली कहावत के अनुरूप हमारे सेवारत चिकित्सकों को कम करके आंकते हैं और विदेश में अनभिज्ञ व्यक्ति को भी पूर्ण ज्ञानी मान लेते हैं। यदि आंकलन किया जाए तो भारत में कहीं से भी यानी सरकारी एवं निजी मेडिकल कॉलेज से चिकित्सा स्नातक कर रहे छात्रों का प्रायोगिक ज्ञान स्तर कुछेक विकसित देशों को छोड़कर बेहतर होता है।

ऐसे में विदेश जा रहे छात्रों के प्रवाह को लगाम देने के लिए और अधिक मेडिकल कॉलेज खोलने संबंधी प्रोत्साहन की आवश्यकता है। यदि प्रतिस्पर्धा से डरते हुए एक बाईपास के रूप में इन छोटे देशों मैं चिकित्सा शिक्षा के लिये जानेवाले छात्रों को रोका नहीं गया तो वह भविष्य में चिकित्सा व्यवस्था को भी प्रभावित करेंगे।

विकल्प के तौर पर विदेशों से शिक्षित स्नातकों के प्रायोगिक कौशल का निर्धारण करने संबंधी व्यवस्था कायम की जानी चाहिए, ताकि वे बेहतर तरीके से मरीज का इलाज कर सकें। सुझाव के तौर पर विदेशों से शिक्षित चिकित्सा स्नातकों के लिए भारत में एफएमजी परीक्षा के पश्चात तीन से छः माह का गहन प्रायोगिक पाठ्यक्रम आयोजित होना चाहिए ताकि वे प्रत्यक्ष ईलाज में भी दक्ष हो सकें। इसके बाद उनकी प्रायोगिक परीक्षा आयोजित कर उन्हें पंजीकरण योग्य करार दिया जाना चाहिए। इससे वर्तमान में उपलब्ध लगभग 1,25,000 चिकित्सा शिक्षा अवसरों को सहयोग भी मिल जाएगा।❑

स्मार्टफोन ने वर्तमान काल को असामाजिक सदी बनाया

दुनिया कैसी दिखेगी अगर हमारे पास पहले मूल्य हों और फिर तकनीक, बजाय इसके कि हम पहले तकनीक को अपनाएं और उनके साथ आने वाले मूल्यों के साथ रहें? लेखक को लगता है कि ऐसा होता है तो एक बेहतर दुनिया होगी। सं.

डेरेक थॉम्पसन

यदि पिछले 60 वर्षों में सामाजिक संबंधों में आई गिरावट पर नज़र डाली जाए तो कई मायनों में मुझे लगता है कि तकनीक या प्रौद्योगिकी इसके लिए बड़ी जिम्मेवार है। हालांकि तकनीक ही एकमात्र ऐसी चीज नहीं है जो यहां भूमिका निभाती है, बल्कि यह एक महत्वपूर्ण भूमिका जरूर निभाती है। यदि हम 1960 के दशक में वापस जायें तो वहां हमें मोटर गाड़ी का उदय दिखाई देता है जिसने लोगों को अपने इलाकों से दूर जाने और उपनगरों में बसने का मौका दिया। इस तरह, आप कह सकते हैं कि मोटर गाड़ी तथा यातायात के नये वाहनों ने जीवन को निजीकृत किया।

यातायात के आधुनिक साधनों के लोकप्रिय होने के ठीक बाद टेलीविज़न आया जिसने लोगों के अवकाश का निजीकरण किया। लोगों ने अपना अवकाश का समय टीवी देखने में बिताना चुना। एक आश्चर्यजनक आंकड़ा है कि 1960 और 1990 के दशक के बीच, औसत अमेरिकी ने हर साल लगभग 300 घंटे का अवकाश का समय मिला। अमेरिकियों के पास वास्तव में 20वीं सदी के उत्तरार्ध में यह उपहार था, और उन्होंने अवकाश के उन अतिरिक्त 300 घंटों को लगभग सिर्फ़ एक ही काम में बिताया, ज़्यादा टेलीविज़न देखना।

अब नये आए स्मार्टफोन ने हमारे ध्यान को निजीकृत कर दिया है। स्मार्टफोन हमें अकेले रहने की अनुमति देता है, तब भी जब हम दूसरे लोगों के आसपास होते हैं। आप किसी कैफ़े में

हो सकते हैं और अकेले हो सकते हैं। आप किसी पार्टी में हो सकते हैं और अकेले हो सकते हैं। आप अनिवार्य रूप से अपनी जागृत चेतना को जब चाहें अकेलेपन के अनुभव में बदलना चुन सकते हैं।

अगर कोई आपसे कहे कि अगले 12 महीनों में आपकी जागृत चेतना में अतिरिक्त 300 घंटे जुड़ जाएँगे, तो आप इसका क्या करेंगे? क्या आप कोई दूसरी भाषा सीखेंगे? क्या आप द ओडिसी पढ़ेंगे? क्या आप अपने बच्चों के साथ ज़्यादा समय बिताएँगे? क्या आप सिलाई या मिट्टी के बर्तन बनाना सीखेंगे?

इसलिए मैंने इस घटना को असामाजिक सदी कहा है, और मैं इसे एक बहुत ही खास कारण से अकेलेपन की सदी के बजाय असामाजिक सदी कहता हूँ। कुछ समाजशास्त्रियों द्वारा परिभाषित अकेलापन वह भावना है जो किसी व्यक्ति को तब होती है जब उसकी महसूस की गई सामाजिकता और उसकी इच्छित सामाजिकता के बीच एक अंतर होता है। यह ऐसा है जैसे मैं सोफे पर टीवी देख रहा हूँ और कह रहा हूँ, यार, मैं उस दोस्त के साथ कॉफी पीना चाहता हूँ।

अकेलापन एक जैविक प्रवृत्ति है जो कई मामलों में स्वस्थ है, जो मुझे सोफे से उठने के लिए प्रेरित करती है। यह वह प्रवृत्ति नहीं है जो आज अधिकांश लोग महसूस करते हैं जिसमें सोफे पर बैठे रहने की प्रवृत्ति होती है।

टिक टॉक पर एक ट्रेंड है जिसे कुछ लोग कैंसलेशन कहते हैं। इसमें यह होता है कि जब कोई दोस्त मिलना रद्द करता है तो वे इसे छोटे से नृत्य को फिल्माते हैं। वे कहते हैं, भगवान का शुक्र है कि मिलना रद्द हो गया। मैं घर पर अकेले ज़्यादा समय बिता सकता हूँ। यह वह व्यक्ति है जो सामाजिक मेलजोल के अवसर के खत्म होने पर जश्न मनाता है। यह अकेले रहने का निर्णय है। एक असामाजिक निर्णय हाई जो स्वस्थ अकेलेपन की अभिव्यक्ति नहीं।

हम अपना सारा समय अपने फ़ोन पर बिताते हैं और फिर जब हम अपना फ़ोन नीचे रखते हैं, तो अपने को थोड़ा थका हुआ पाते हैं।

ये असामाजिक सदी की सामाजिक लागतें हैं। यह एक ऐसी दुनिया है जहाँ लोग अकेलेपन की आवाज़, लोगों के साथ रहने की जैविक इच्छा को न सुनने के लिए जैव रासायनिक रूप से छल कर सकते हैं, अपने लिए बहुत अधिक अकेलेपन की माँग करते हैं, इतना अकेलापन जो वास्तव में उनके लिए बुरा है।

भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक स्तर पर इसकी कीमत स्पष्ट है। चिंता की दर आसमान छू रही है। सामाजिक चिंता की दर आसमान छू रही है। युवा लोग कभी इतने उदास नहीं रहे, या कभी नहीं कहा कि उनके कम दोस्त हैं। हम खुद के साथ ऐसा कर रहे हैं, और हमें ऐसा करने की ज़रूरत नहीं है।

इसलिए मैं स्वाभाविक रूप से आशावादी हूँ। मुझे लगता है कि हम इस समस्या को ठीक कर सकते हैं। लेकिन इससे पहले कि हम इस समस्या को ठीक करने के बारे में बात करें, मुझे लगता है कि मुझे यथार्थवादी होना चाहिए और चर्चा करनी चाहिए कि यह कैसे बदतर हो सकता है।

अभी, हम जनरेटिव एआई का उदय देख रहे हैं। हम में से कई लोग इसे एक दोस्त की तरह मानते हैं। एक कंपनी है जिसके दसियों लाख उपयोगकर्ता हैं। ये वे लोग हैं जो चैटबॉट के साथ भावनात्मक संबंध विकसित कर रहे हैं। मुझे लगता है कि यह भविष्य, जिसकी ओर हम नींद में चल रहे हैं, दोनों ही तरह से संभव और बेहद डरावना है।

लेकिन मुझे लगता है कि इस तथ्य को गंभीरता से लेना उचित है कि आज कई युवा लोगों का अपने दोस्तों के साथ एक रिश्ता है जो लगभग पूरी

तरह से फ़ोन टेक्स्टिंग और मीम्स शेयर करने के ज़रिए होता है। जब आप किसी के साथ टेक्स्ट कर रहे होते हैं, तो उनके साथ आपका रिश्ता क्या है? आप बस बुलबुले का आदान-प्रदान कर रहे हैं।

अनुभव के स्तर पर किसी मित्र को टेक्स्ट करने और एआई के बीच वास्तविक अंतर क्या है? मैं एक ऐसे भविष्य के बारे में सोचता हूँ जहाँ युवा लोग कहते हैं, मेरे लिए आभासी जीवन रूपों के साथ भावनात्मक संबंध विकसित करना भौतिक जीवन रूपों की तुलना में आसान लगता है। यह कितना डरावना है। वे एक रिश्ते से क्या चाहते हैं? मान्यता, उपलब्धता की भावना, एक भावना कि कोई उत्तरदाता है जो उनके सबसे गहरे डर को समझता है, उन्हें पता चल सकता है कि यह भौतिक की तुलना में आभासी सिलिकॉन से अधिक कुशलता से प्राप्त होता है। यही कारण है कि मुझे चिंता है कि हम एक ऐसा मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं जिस पर एआई साथी आसानी से चलेंगे।

लेकिन साथ ही, मैं एक मौलिक रूप से आशावादी व्यक्ति हूँ, और मुझे लगता है कि इन समस्याओं को हल किया जा सकता है। सौभाग्य से, असामाजिक सदी के लिए मारक का आविष्कार करने की आवश्यकता नहीं है। यह अल्जाइमर या अग्नाशय के कैंसर जैसा कुछ नहीं है, जहां हम वैज्ञानिकों द्वारा इलाज के आविष्कार का इंतज़ार कर रहे हैं। इलाज हम ही हैं। लेखक नील स्टीफेंसन का एक विचार है जिसे एमिस्टिक्स कहा जाता है, जो एक ऐसा शब्द है जिसे उन्होंने अमिश से अपनाया है, जिसे वे उन मूल्यों के रूप में मानते हैं जो हम तकनीक को देते हैं। वह बताते हैं कि अमिश सभी तकनीक को अस्वीकार करने के लिए प्रसिद्ध हैं, लेकिन वास्तव में, वे सभी तकनीक को अस्वीकार नहीं करते हैं। उनके पास कभी-कभी वॉशिंग मशीन होती हैं। उनके पास सौर ऊर्जा होती है। इसके बजाय, उनके पास तकनीक के लिए एक बहुत ही छोटे-छोटे फ़िल्टर है। वे अपने जीवन में तकनीक को तभी स्वीकार करते हैं जब उन्हें लगता है कि यह पहले से मौजूद मूल्य की मदद में है। इसलिए वे टेलीविज़न को मना कर देते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि टेलीविज़न परिवारों के बीच हैंगआउट में बाधा डाल सकता है, लेकिन वे सौर ऊर्जा को हां कहते हैं क्योंकि यह उनके जीवन को सशक्त बना सकता है। मुझे आश्चर्य है कि क्या सभी अमेरिकी एक एमिस्टिक संवेदनशीलता से लाभान्वित हो सकते हैं।

हमारे जीवन को अधिक सुविधाजनक बनाने वाली किसी भी तकनीक को अपनाने और फिर उस अपनाने के भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक परिणामों के साथ जीने के बजाय, क्या होगा यदि हम अपने मूल्यों के लिए तकनीक को फ़िल्टर करें? शायद हमारे मूल्य रोमांस या परिवार का साथ हों। शायद हमारा मूल्य एक डिजिटल या वास्तविक विश्राम हो। शायद हमारा मूल्य ढळ्ज्ञढेज्ञ वीडियो के बीच स्वाइप करने में लगने वाले 15 सेकंड से अधिक समय तक एक ही चीज़ पर ध्यान केंद्रित करने की हमारी क्षमता को बनाए रखना है। दुनिया कैसी दिखेगी अगर हमारे पास पहले मूल्य हों और फिर तकनीक, बजाय इसके कि हम पहले तकनीक को अपनाएँ और उनके साथ आने वाले मूल्यों के साथ रहें? मुझे लगता है कि यह एक बेहतर दुनिया होगी। मुझे लगता है कि यह एक अधिक उद्देश्यपूर्ण दुनिया होगी, मुझे लगता है कि यह एक अधिक सामाजिक दुनिया होगी, और मुझे मौलिक रूप से लगता है कि यह एक खुशहाल दुनिया भी होगी।❑

लेख

हाइपर कनेक्टेड दुनिया में अकेलेपन की महामारी

ग्लासगो विश्वविद्यालय के राजनीति अर्थशास्त्र के प्रोफेसर इस वैचारिक आलेख में कह रहे हैं कि स्वतंत्र, सुखी और समृद्ध पूंजीवाद की धारणा एक मिथक से अधिक कुछ नहीं है। सं.

❑

भवानी शंकर नायक

❑

सोशल मीडिया की हमारी हाइपर-कनेक्टेड दुनिया में अकेलेपन की महामारी तेजी से फैल रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अध्ययन से पता चलता है कि चीन, भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोप और लैटिन अमेरिका के क्षेत्रों में 20-34 प्रतिशत वृद्ध लोग अकेलेपन का अनुभव करते हैं। इसी तरह, युवाओं के बीच दोस्ती और सार्थक संबंधों का भी संकट है।

अकेलेपन की सामाजिक और भावनात्मक कीमत की गणना करना असंभव है। 'कैंपेन टू एंड लोनलीनेस' द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट द स्टेट ऑफ लोनलीनेस 2023: ऑफिस ऑफ नेशनल स्टैटिस्टिक्स डेटा ऑन लोनलीनेस इन ब्रिटेन, जून 2023 के अनुसार, सभी आयु समूहों के बीच अकेलेपन में चिंताजनक वृद्धि हुई है। अकेलेपन का बढ़ता संकट समाज में मृत्यु, गरीबी, अवसाद, खराब स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य संकट, अपराध और अन्य प्रकार के असामाजिक और असामाजिक व्यवहार को जन्म देता है।

अकेलापन एक वैश्विक सामाजिक और स्वास्थ्य संकट है जो पूरी तरह से व्यक्तिगत स्वभाव का उत्पाद नहीं है, बल्कि डिजिटल के नए रूपों द्वारा आकार लेने वाली व्यापक पूंजीवादी संरचनाओं और प्रक्रियाओं का परिणाम है।

एकांत का आदर्श और संस्कृति एक सोची समझी व्यक्तिगत पसंद हो सकती है, लेकिन अकेलापन अक्सर पूंजीवादी संस्कृति में गहराई से समाए प्रणालीगत कारकों के परिणामस्वरूप उभरता है। इस ढांचे के भीतर, व्यक्तिगत सफलता और आत्म-प्रचार पर जोर अलगाव की व्यापक भावना को जन्म देता है, क्योंकि लोग सामूहिक कल्याण की जगह अपनी व्यक्तिगत उन्नति को प्राथमिकता देते हैं। यह आत्मकामी संस्कृति अलगाव के एक चक्र को बनाती है, जहां व्यक्ति एक-दूसरे और अपने समुदायों से तेजी से विलग होते जाते हैं।

पूंजीवादी समाजों का ताना-बाना, प्रतिस्पर्धा और भौतिक लाभ पर जोर देने के साथ, ऐसे वातावरण का निर्माण करता है जो मानव पूर्ति के लिए आवश्यक सामाजिक बंधनों पर मुनाफे को प्राथमिकता देता है। इस प्रकार, अकेलापन एक अंतर्निहित विशेषता के रूप में नहीं बल्कि पूंजीवादी समाज द्वारा पोषित अलगाव की स्थितियों के उप-उत्पाद के रूप में उभरता है।

पूंजीवाद अलगाव पर पनपता है, सभी प्रकार की अलगावकारी स्थितियों को कायम रखता है और उनका पुनरुत्पादन करता है। आर्थिक और दार्शनिक पांडुलिपियों में, मार्क्स ने चार प्रकार के अलगाव की चर्चा की थी : अपने स्वयं के उत्पाद और श्रम से अलगाव, श्रम की प्रक्रिया से अलगाव, स्वयं के स्वयं से अलगाव, और अन्य साथी मनुष्यों/कर्मियों से अलगाव। अलगाव के ये चार रूप डिजिटलीकरण के युग में भी आधुनिक पूंजीवाद की नींव बने हुए हैं। तकनीकी प्रगति ने अलगाव के इन सभी रूपों को और भी धार दे दी है। अलग-थलग करने वाली स्थितियां असहाय और अकेले व्यक्तियों को जन्म देती हैं जिनका खुद पर नियंत्रण नहीं होता है। उनका जीवन और स्वतंत्रता उन लोगों द्वारा तय होती है जो पूंजी और संगठनों को नियंत्रित करते हैं।

अलगाव कोई पृथक स्थिति नहीं है; यह पूंजीवादी व्यवस्था का एक अभिन्न अंग है, जहां सार्थक मानवीय और सामाजिक संबंधों का विनाश समाज की कीमत पर एक घातक अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिए केंद्रीय है। श्रम और प्रकृति के शोषण पर आधारित लाभ-संचालित आर्थिक व्यवस्था को बढ़ावा देने के लिए समाज को नष्ट कर दिया गया है। ऐसी शोषणकारी व्यवस्था केवल अलग-थलग और एकाकी व्यक्तियों को बढ़ावा देकर ही खुद को कायम रख सकती है, इस प्रकार एक 'अकेलेपन वाली अर्थव्यवस्था' का विकास होता है और पूंजीवाद ही एकमात्र उपलब्ध विकल्प बन जाता है।

पूंजीवाद, लाभ की अपनी निरंतर खोज के साथ, अक्सर सामूहिक भावना और मानवता की सहज सामाजिक प्रकृति की कीमत पर आता है। यह व्यक्तिगत स्थान, स्वतंत्रता, खुशी, उपयोगिता, आनंद और संतुष्टि जैसे आदर्शों का समर्थन करता है, जिन्हें अक्सर भौतिक संपदा और उपभोग के माध्यम से प्राप्त करने योग्य के रूप में चित्रित किया जाता है। हालांकि, पूंजीवादी ढांचे के भीतर इन आदर्शों की खोज अतृप्त ही रहती है,मगर वह व्यक्तियों को श्रम और उपभोग के एक सतत चक्र में ले जाती है, जहां पूर्ति मायावी बनी रहती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि वास्तव में इन आकांक्षाओं का सार स्वाभाविक रूप से भौतिक संपत्ति के संचय या व्यक्तिगत सफलता के बजाय सामूहिक अनुभवों और रिश्तों में निहित होता है। एक सामूहिक समाज में, जो साझाकरण, सहयोग और सहानुभूति को प्राथमिकता देता है, इन आदर्शों को प्राप्ति के लिए उपजाऊ जमीन मिलती है, क्योंकि वे स्वाभाविक रूप से समग्र रूप से समुदाय की भलाई के साथ जुड़े हुए हैं।

पूंजीवाद ने समाज की सामूहिक नींव को इस हद तक नष्ट कर दिया है कि सोशल मीडिया की हाइपर-कनेक्टेड दुनिया भी इसे नहीं बदल सकती है। यह असुरक्षित, अकेले, शक्तिहीन, भयभीत और अलग-थलग व्यक्तियों के उत्पादन का केंद्र है जो अपने रोजमर्रा के जीवन में अवसाद और चिंता से जूझते हैं। इन कमजोर व्यक्तियों द्वारा पूंजीवाद के शोषणकारी और अप्राकृतिक आधारों पर सवाल उठाने की संभावना नहीं है। अकेले और अलग-थलग व्यक्तियों से भरे समाज में पूंजीवाद को कोई खतरा नहीं है। स्वतंत्र, सुखी और समृद्ध पूंजीवाद की धारणा एक मिथक से अधिक कुछ नहीं है।

पूंजीवाद, अपने सभी रूपों में, अकेलेपन को जन्म देता है। पूंजीवाद की डिजिटल कल्पनाएं अकेलेपन को ख़त्म नहीं कर सकतीं। इसलिए, अकेलेपन को खत्म करने का संघर्ष पूंजीवाद की नींव के खिलाफ एक संघर्ष है। शोषण और असमानता से मुक्त, एकजुटता, करुणा और सामूहिक साझेदारी के सिद्धांतों पर स्थापित समाज ही पूंजीवादी समाजों में व्याप्त व्यापक अलगाव के एकमात्र विकल्प के रूप में खड़ा हो सकता है।❑

अंतरिक्ष

अंतरिक्ष की खोज में भारत का बड़ा कदम शुभांशु शुक्ला ने अंतर्राष्ट्रीय स्पेस स्टेशन में गुजारे दो हफ्ते

भारतीय अंतरिक्षयात्री शुभांशु शुक्ला अपनी टीम के साथ एक्सिओम-4 मिशन के तहत अंतर्राष्ट्रीय स्पेस स्टेशन में दो हफ्तों से अधिक समय गुजार कर धरती पर लौट आए हैं।

एक्सिओम-4 मिशन के चारों अंतरिक्षयात्रियों को आईएसएस से वापस लेकर आया स्पेसएक्स का ड्रैगन स्पेसक्राफ्ट कैलिफोर्निया के तट के पास प्रशांत महासागर में उतरा, जिसे तकनीकी भाषा में स्पलैशडाउन कहा जाता है।

यह स्पेसक्राफ्ट अपने साथ 580 पाउंड कार्गो भी लेकर आया है जिसमें नासा का हार्डवेयर और एक्सिओम-4 मिशन के दौरान किए गए 60 से ज्यादा परीक्षणों का डेटा शामिल है।

यह मिशन 25 जून को फ्लोरिडा के कैनेडी स्पेस सेंटर से लॉन्च हुआ था। 26 जून को चारों अंतरिक्षयात्री आईएसएस में पहुंचे थे। वे करीब ढाई हफ्तों तक आईएसएस पर रहे और इस दौरान कई वैज्ञानिक परीक्षणों को अंजाम दिया।

यह यात्रा ऐतिहासिक थी क्योंकि वे 1984 में रूसी अंतरारीक्ष यान में गये राकेश शर्मा के बाद आईएसएस पर पहुंचने वाले पहले भारतीय बने। मिशन के दौरान उन्होंने 60 से अधिक प्रयोग किए, जिनमें से कम से कम सात सीधे इसरो और भारतीय संस्थानों द्वारा विकसित थे - जैसे कि मूंग, मेथी पर अनुवांशिक अध्ययन, माइक्रोग्रेविटी में सेल्युलर रिस्पॉन्स, मांसपेशियों की कमजोरियों

पर शोध, कैनाबैक्टेरिया व माइक्रोएल्गी, और स्क्रीनयूज के प्रभाव। इन प्रयोगों का उद्देश्य आगामी गगनयान मानव मिशन के लिए जीवनसमर्थन प्रणालियों और प्रशिक्षण मॉडलों को परिष्कृत करना था ।

भारत अपना पहला स्वदेशी मानवयुक्त मिशन, गगनयान, 2027 तक तैनात करने की योजना बना रहा है। इसके तहत तीन भारतीय अंतरिक्ष यात्री – जिनमें शुक्ला भी शामिल हैं – को छह–सात दिनों के लिए कक्षा में भेजा जाएगा। इस मिशन में लॉन्च्ड वाहन (क्ष्ढतच3), मानवसंचालित कैप्सूल, जीवनसमर्थन एवं पुनःप्रवेश प्रणालियाँ इसरो निर्मित होंगी।

ए एक्स–4 जैसे निजी और बहुराष्ट्रीय मिशनों ने इसरो को वैज्ञानिक, तकनीकी और संचालनआधारित अनुभव उपलब्ध कराए। इसके फलस्वरूप तकनीकी तैयारियों, मेडिकल मॉनिटरिंग, क्रूग्राउंड तालमेल, और इमरजेंसी प्रक्रिया पर एक व्यावहारिक आधार स्थापित हुआ जो गगनयान के लिए एक ठोस ढांचा प्रदान करेगा ।

शुभांशु द्वारा किये गई प्रयोग शृंखला में कृषि, बायोलॉजी, मानव स्वास्थ्य और माइक्रोग्रेविटी में तकनीकी अन्वेषण शामिल थे। इनसे उपजी जानकारी न केवल गगनयान के लिए बल्कि भारत में स्टार्टअप्स, बायोटेक उद्योग, और शैक्षणिक अनुसंधान को भी मजबूत आधार देगी । साथ ही, उन्होंने आईएसएस से भारतीय विद्यार्थियों से संवाद भी किया, जिससे अंतरिक्ष शिक्षा में व्यापक जनचेतना और प्रेरणा मिली।

ए एक्स4 मिशन में इसरो – नासा – स्पेस एक्सिओम के बीच साझेदारी ने भारत को वैश्विक स्पेस समुदाय में एक भरोसेमंद तकनीकी सहयोगी के रूप में स्थापित किया है। इसका प्रभाव गगनयान से आगे, जैसे चंद्र या मंगल अभियानों की दिशा में, सकारात्मक रहेगा।

शुभांशु शुक्ला की अंतरिक्ष उड़ान न सिर्फ व्यक्तिगत सफलता है, बल्कि भारत की अंतरिक्ष महत्वाकांक्षा के लिए एक नए युग का प्रारंभ भी है। इस मिशन ने तकनीकी आत्मनिर्भरता, अंतर्राष्ट्रीय भागीदारी, वैज्ञानिक अनुसंधान और युवा प्रेरणासभी क्षेत्रों में भारतीय अंतरिक्ष यात्रा को विश्व–स्तरीय मंच पर रूपांतरित किया है।

गगनयान के साथ भारत एक ऐसी ऊँचाई की ओर अग्रसर है, जहाँ सिर्फ सपने से नहीं, बल्कि कक्षा में भी भारतीय झंडा लहराता नजर आएगा।❑

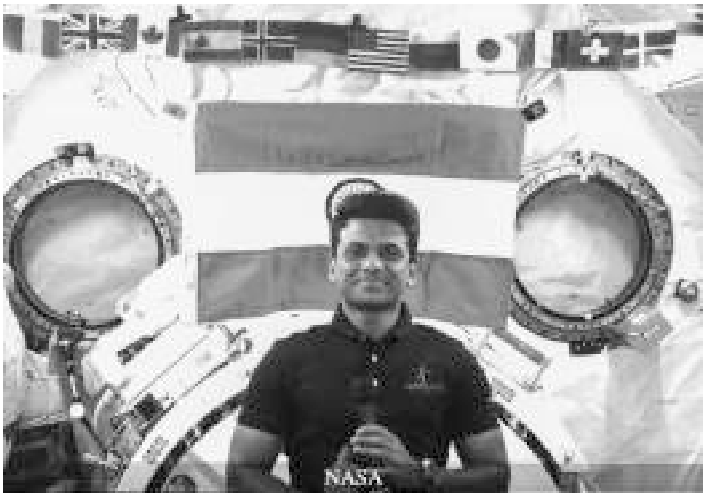

एक व्यक्तिगत वोट क्या वास्तव में अंतर ला सकता है? इसी पर फरहीन फरीद विमर्श कर रही हैं। उन्होंने दलित और अल्पसंख्यक अध्ययन पर जामिया मिलिया इस्लामिया नई दिल्ली के डॉ. के आर नारायणन सेंटर से पीएचडी की है।

❑

फरहीन फरीद

कश्मीर के लोकसभा चुनाव में मेरा पहला वोट

❑

मई 2024 में, मैंने अपना पहला वोट देकर कश्मीर लोकसभा चुनाव में भाग लिया। मैंने व्यक्तिगत अलगाव और राजनीतिक माहौल के कारण वर्षों से इस अनुष्ठान को टाल दिया था, लेकिन इस बार यह अलग था। अन्य मतदाताओं के साथ कतार में खड़े होकर, अपना मतदाता पहचान पत्र पकड़े हुए, मुझे उद्देश्य और जिम्मेदारी की एक मजबूत भावना महसूस हुई। मतदान करने का कार्य, जो मुझे पहले घबराहट देता था, अब मेरे लिए गहरा अर्थ रखता था। अपने वयस्क वर्षों के एक महत्वपूर्ण हिस्से में मैंने अपने को राजनीतिक व्यवस्था से अलग-थलग महसूस किया और माना कि मेरे वोट का भविष्य पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ेगा। कई अन्य लोगों की तरह, मैं कश्मीर में चल रही चुनौतियों, उथल-पुथल के बार-बार होने वाले दौर और चुनाव प्रणाली में विश्वास की कमी से निराश थी। अधिक महत्वपूर्ण मुद्दों की उपस्थिति में मेरा व्यक्तिगत वोट वास्तव में क्या अंतर ला सकता है?

हालांकि, समय के साथ, मुझे समझ में आने लगा कि जिस व्यवस्था से मैंने खुद को दूर कर लिया था, वह सीधे उस समाज को आकार दे रही थी जिसमें मैं रहती थी। मेरी रोजमर्रा की जिंदगी को प्रभावित करने वाली नीतियां- शिक्षा, रोजगार, सुरक्षा- सभी निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा लिए गए निर्णयों का परिणाम थीं। बदलते राजनीतिक परिदृश्य, अनुच्छेद 370 के निरस्तीकरण और क्षेत्र के भविष्य को लेकर होने वाली बातचीत के साथ, मुझे एहसास हुआ कि यह चुनाव सिर्फ पार्टी की राजनीति के बारे में नहीं था, यह कश्मीर के भविष्य और उस भविष्य में अपनी आवाज उठाने के बारे में था। मैं अब और किनारे पर नहीं रह सकती थी। मेरे लिए मतदान करना एक नागरिक के रूप में अपनी आवाज और जिम्मेदारी को पुनः प्राप्त करने का कार्य बन गया।

जब मैंने यह लेख लिखना शुरू किया, तो मैं अपने नाखून पर स्याही के

निशान को देखे बिना नहीं रह सकी, जो मेरे द्वारा इसे मिटाने की कितनी भी कोशिश करने के बावजूद मिटने का नाम नहीं ले रहा था। यह मेरे विकल्पों और अनुभवों की याद दिलाता था। यह काला निशान एक अशांत वातावरण में बड़े होने की चुनौतियों का प्रतीक था। हालाँकि स्याही का दाग बदसूरत था, लेकिन यह मेरी पहचान और अस्तित्व का प्रतीक था। यह वह सब कुछ दर्शाता था जिसकी मैं बचपन में चाहत रखती थी और उम्मीद की एक किरण प्रदान करता था। यह मेरी कुंठाओं और वर्षों के अनसुलझे आघात, अराजकता, अलगाव और क्रोध को दर्शाता था। फिर भी, साथ ही, यह मेरे सपनों, महत्वाकांक्षाओं, आशा, स्वीकृति और उत्साह को भी दर्शाता था।

20 मई 2024 को, जब मैं मतदान केंद्र की ओर जा रही थी, तो हर धड़कन के साथ, मुझे वो सारे अनुभव याद आ रहे थे जो बचपन से ही मेरे अंदर दबे हुए थे। मैं अपने चेहरे पर खून की गर्माहट महसूस कर सकती थी। यह एक आम फिल्मी दृश्य की तरह था, जहां उस समय तक की मेरी ज़िंदगी मेरे सामने घूम रही थी। उन कुछ पलों में, मैं अपने किशोर भाई को देख सकती थी, जब स्कूल की आखिरी घंटी बजने के तुरंत बाद हमारे स्कूल पर ग्रेनेड फेंका गया था। भावनाओं और सुन्नता का वह दौर बहुत जाना-पहचाना था। मैं उस पल में भी वापस चली गयी जब मैंने एक सप्ताहांत पर अपने सामने एक बारूदी सुरंग को डिफ्यूज होते देखा था। तभी मुझे पता चला कि बारूदी सुरंगों को डिफ्यूज करने का मतलब लाल या नीले तार को धीरे से काटकर उन्हें खत्म करना नहीं है, जैसा कि हम सभी बॉलीवुड फिल्मों में देखते हुए बड़े हुए हैं; इसका मतलब है उन्हें नियंत्रित वातावरण में उड़ा देना। मैंने इसे बहुत मुश्किल से सीखा – मुझे यह एहसास तब हुआ जब तीन मंजिला घर की सभी खिड़कियों के शीशे टूट गए। हालाँकि अधिकारियों ने उस दिन किसी भी शारीरिक क्षति को सफलतापूर्वक रोका, लेकिन वे जो नियंत्रित नहीं कर सके, वह था इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव।

मेरे हाथ में मतदाता पहचान पत्र ने मुझे हमारे स्कूल बोर्ड परीक्षा के एडमिट कार्ड की याद दिला दी, जो कर्फ्यू पास की अतिरिक्त भूमिका निभाता था, जिससे हमें हमारे परीक्षा केंद्रों तक सुरक्षित पहुँच मिलती थी। उस समय, जब हम अपने छोटे चचेरे भाई-बहनों को अपने एडमिट कार्ड दिखाते थे, तो हमें गर्व की अनुभूति होती थी, और हम इस बात पर गर्व करते थे कि केवल हम, चुने हुए लोग ही तनावपूर्ण कर्फ्यू के समय सड़कों पर चल सकते हैं।

प्रवेश द्वार पर खड़े होकर, अपने विचारों के बवंडर में खोए हुए, प्रदर्शनकारियों द्वारा फेंके गए पत्थरों से बचते हुए, खाली सड़कों से गुजरते हुए, घास के मैदानों में बहरेपन में खोते हुए और सड़कों पर आंसू गैस के धुएं से बचते हुए, मेरे सिर में एक तेज़ आवाज़ ने मुझे वास्तविकता में वापस ला दिया। मतदान केंद्र में प्रवेश करने की मेरी बारी थी। जैसे ही मैं वहाँ खडी हुई, अपनी ताकत जुटाते हुए, मैं अपनी यादों के पन्नों से गुज़री। उन्हें एक-एक करके पलटते हुए, अनुभवों से गुज़रते हुए, मैं उस खाली पन्ने पर रुक गयी जो मेरे विचारों से भरना चाहते थे - विचार जो ढेर हो गए थे, बिना किसी वेंट या अभिव्यक्ति के। मैंने अचानक एक आवाज़ सुनी जो मुझसे स्याही लगाने के लिए एक उंगली पेश करने के लिए कह रही थी। अभिभूत होकर, मैंने अपना पूरा हाथ पेश कर दिया। मैं उस पल के लिए पूरी तरह तैयार थी। मैंने अपने दिमाग में डायरी बंद कर ली, उसे यादों के बक्से में सुरक्षित रख लिया - हमेशा की तरह, और धींढींलश ट्यूटोरियल को याद करने की कोशिश की, जिसे मेरे पिता ने, जो उतने ही घबराए हुए थे, मुझे और मेरे भाई को एतच् का उपयोग करने के तरीके के बारे में बताया था। भावनाओं का एक ज्वार मुझ पर हावी हो गया - घबराहट और उत्साह का मिश्रण। सालों से, मैंने दूर से चुनावों को होते देखा था, लेकिन उस दिन, मैं इस प्रक्रिया का हिस्सा बन गयी। अपना वोट डालना सिर्फ़ एक व्यक्तिगत कार्य नहीं था, यह बहुत कुछ का प्रतीक था। मैं एक ऐसे भविष्य के लिए वोट कर रही थी जिस पर मुझे विश्वास था, उन नीतियों के लिए जो बदलाव ला सकती थीं, और उस उम्मीद की भावना के लिए कि मेरी पीढ़ी कश्मीर के लिए एक बेहतर कल को आकार देने में मदद कर सकती है। मैं अपने चेहरे पर मुस्कान और बहुत हल्कापन लिए घर लौटी। जैसे-जैसे मैं लिखती गयी, मैं इस बात से हैरान थी कि पिछले कुछ सालों में मेरे लिए शांति की अवधारणा कैसे बदल गई है। किसी तरह इसका मतलब अब संघर्ष, कर्फ्यू और खून-खराबे का अंत नहीं था। मुझे एहसास हुआ है कि शांति का विचार गंभीर परिस्थितियों के बीच में ही सबसे गहरा अर्थ प्राप्त करता है। अराजकता के बावजूद, मैंने एक आंतरिक शांति महसूस की क्योंकि यह संकट के केंद्र में था, जब मेरे आस-पास सब कुछ बिखर रहा था, मैंने खुद को इकट्ठा करना सीखा, जीवन और संबंधों को महत्व देना शुरू किया, अधिक आभारी हुआ और समझा कि शांति का सही अर्थ क्या है। मेरे लिए, शांति अब काल्पनिक नहीं है; अब इसके अलग-अलग अर्थ हैं। शांति जीवन की छोटी-छोटी खुशियों में निहित है - सुरक्षित घर पहुँचना, अपने प्रियजनों के साथ शाम की चाय पीना, यहाँ तक कि जब सड़कों पर तनाव मंडरा रहा हो, अपने पैरों को बर्फीली धाराओं में डुबाना, यह जानते हुए कि यह अस्थायी हो सकता है। यह संकट के समय अपने परिवार के साथ रहने, आसमान में लड़ाकू विमानों के साथ पिछवाड़े में फल और सब्जियाँ उगाने और यहाँ तक कि यह जानने में भी महसूस होता है कि घर में आपात स्थिति के लिए पर्याप्त आवश्यक वस्तुएँ हैं। शांति क्षणभंगुर क्षणों में निहित है - अस्तित्व, लचीलापन और जीवित रहने के दैनिक कार्य। विरोधाभासी रूप से, अब मैं यह मानने लगी हूँ कि अक्सर अराजकता की गहराई में ही एक दुर्लभ शांति पनपने लगती है। जब भी मुझे वह दिन याद आता है जब मैंने ईवीएम पर बटन दबाया था, तो मुझे एहसास होता है कि उस क्षण भी मुझे कुछ गहरा महसूस हुआ था - शांति की एक अजीब सी अनुभूति।❑

हौसला बढ़ाने वाली किताब 'अबंडेन्स' के लेखक द्वय कहते हैं कि भविष्य आप जितना सोचते हैं उससे कहीं अधिक बेहतर है। इसी किताब की भूमिका का सम्पादित अंश। सं.

❑

पीटर डायमेंडिस

❑

स्टीवन कोटलर

संभावनाओं से भरी दुनिया का समय आ गया है

❑

हम संभावनाओं से भरी एक ऐसी दुनिया बनाने के समय में हैं जहां हर किसी का दिन सपने देखने और कुछ करने में बीते, न कि जिंदगी के लिए संघर्ष करने में। इससे पहले कभी भी ऐसी कोई उम्मीद नहीं थी।

मानव इतिहास के अधिकांश समय में, जीवन एक सीमित प्रक्रिया थी। सिर्फ़ जीवित रहने के तरीके खोजने में ही हमारी अधिकांश ऊर्जा खर्च हो जाती थी। किसी की रोज़मर्रा की ज़िंदगी और उसकी असली क्षमता के बीच का अंतर वाकई बहुत बड़ा था। लेकिन इस असाधारण समय में, वह खाई कम होने लगी है।

परिवर्तन एक निश्चित स्तर पर, तकनीक के एक मूलभूत गुण द्वारा संचालित होता है जिसे सैद्धांतिक जीवविज्ञानी स्टुअर्ट कॉफ़मैन आसन्न संभव कहते हैं। पहिये के आविष्कार से पहले, गाड़ी, कैरिज, ऑटोमोबाइल, व्हीलबैरो, रोलर स्केट और गोलाकारता की लाखों अन्य शाखाओं की कल्पना ही नहीं थीं। लेकिन एक बार खोज लेने के बाद, ये रास्ते स्पष्ट हो गए। यही आसन्न संभव है। यह संभावनाओं की एक लंबी सूची है जो किसी नई खोज के होने पर खुलती है।

लेखक स्टीवन जॉनसन ने वॉल स्ट्रीट जर्नल में लिखा था, आसन्न संभावनाओं के बारे में अजीब और खूबसूरत सच्चाई यह है कि जैसे-जैसे आप उनकी खोज करते हैं, उनकी सीमाएँ बढ़ती जाती हैं। हर नया संयोजन अन्य नए संयोजनों की संभावना को खोलता है। इसे एक ऐसे घर की तरह सोचें जो आपके द्वारा खोले गए हर दरवाज़े के साथ जादुई रूप से फैलता जाता है। आप एक कमरे से शुरुआत करते हैं जिसमें चार दरवाज़े हैं, जिनमें से प्रत्येक एक नए कमरे की ओर जाता है जहां आप अभी तक नहीं गए हैं। जैसे ही आप उनमें से एक दरवाज़ा खोलते हैं और उस कमरे में प्रवेश करते हैं, तीन नए दरवाज़े दिखाई देते हैं, जिनमें से प्रत्येक एक बिल्कुल नए कमरे की ओर जाता है जहां आप अपने मूल शुरुआती बिंदु से नहीं पहुंच सकते थे। इसलिए नये दरवाज़े खोलते जाएं, और अंततः आप एक महल बना लेंगे।

आसन्न संभावनाओं का हमारा

मार्ग हमें समय के एक अनोखे क्षण तक ले गया है। हम एक ऐसी दुनिया में पहुंच गये हैं जहाँ तकनीक की विशाल प्रकृति हमारी आंतरिक इच्छाओं से जुड़ने लगी है। टेक्नोलॉजी क्या चाहती है में, केविन केली इसे इस तरह समझाते हैं: अधिकांश इतिहास में, प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिभा, कौशल, अंतर्दृष्टि और अनुभवों के अनूठे मिश्रण का कोई निकास नहीं था। अगर आपके पिता सुनार थे, तो आप भी सुनार थे।

तकनीक जैसे-जैसे संभावनाओं के दायरे का विस्तार करती है, वैसे-वैसे यह संभावना भी बढ़ती है कि कोई व्यक्ति अपने व्यक्तिगत गुणों के लिए एक निकास पा सके।

जब हम तकनीक की विविधता और पहुंच का विस्तार करते हैं, तो हम विकल्प बढ़ाते हैं, न केवल अपने लिए और न ही दूसरों के लिए, बल्कि आने वाली सभी पीढ़ियों के लिए भी।

आधी सदी पहले, अब्राहम मास्लो ने बताया था कि जिन लोगों की बुनियादी ज़रूरतें पूरी नहीं हो रही थीं, उनके पास आत्म-पूर्ति के लिए बहुत कम समय था। अगर आप अपना पेट भरने या अपने बच्चों के लिए दवाइयों की खोज करने या इसी तरह के अन्य खतरों से बचने की कोशिश कर रहे हैं, तो संभावना वाला जीवन जीना कोई बड़ी बात नहीं है। लेकिन जैसा कि अर्थशास्त्री डैनियल कामैन ने समझा था, यही वह जगह है जहां आसन्न संभावनाएं प्रचुरता के रास्ते से मिलती हैं और एक शानदार तरीके से आगे धकेलती है।

इस बात पर कोई बहस नहीं है कि पिछले पांच दशकों में निम्नतम स्तर पर जीवन काफ़ी बेहतर हुआ है। इस दौरान, विकासशील देशों में जीवन प्रत्याशा बढ़ी है, शिशु मृत्यु दर कम हुई है, सूचना, संचार, शिक्षा, गरीबी से बाहर निकलने के संभावित रास्ते खुले हैं। वास्तव में हम बहुत आगे बढ़ चुके हैं।

अब हमें अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इतिहास की मदद का इंतज़ार नहीं करना पड़ता। हम खुद भी मदद कर सकते हैं। हमारे पास प्रचुरता के लिए कठिन लक्ष्य हैं, हम जानते हैं कि किन तकनीकों को आगे और विकास की आवश्यकता है। अगर हम जोखिम उठाने की अपनी क्षमता में सुधार ला सकें और जो हासिल हो रहा है उसका लाभ उठा सकें तो हम पहले से कहीं ज़्यादा तेज़ी से ए से बी तक पहुंच सकते हैं।

पहले के ज़माने के विपरीत हम मामलों को अपने हाथों में ले सकते हैं। आज का तकनीकी परोपकारी समूह आवश्यक बीज पूँजी (और अक्सर उससे भी कहीं ज़्यादा) प्रदान करने के लिए दृढ़ संकल्पित नजर आता है।

आज के मानव ने अपने को सक्षम साबित कर दिया है और मानवता का एक-चौथाई हिस्सा जो हमेशा किनारे पर रहा है आखिरकार खेल में शामिल हो गया है।❑

महात्मा गांधी के संपर्क में जो भी आता उन्हीं का हो जाता था जैसे वे कोई पारस पत्थर हों जिससे छू कर लोहा भी सोना हो जाता है। वर्षा जी का यह आलेख हम इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित मोनोग्राफ से किंचित सम्पादन के साथ साभार ले रहे हैं। सं.

❑

वर्षा दास

गांधी के पारस स्पर्श से महिलाओं ने अपना वजूद बनाया

❑

शास्त्रों में हमने पढ़ा है कि विदुषी गार्गी और मैत्रेयी विद्वानों के साथ विचार–विमर्श करती थीं। महाकाव्य महाभारत में वर्णित प्रायः सभी स्त्रियां पुरुष पात्रों की तुलना में अधिक सक्षम पाई जाती है। ऐसे समृद्ध एवं संवेदनशील अतीत के बावजूद कालक्रम में नारी का सम्मान समाज में घटता गया। इसके राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक कारण हमारे इतिहास में मौजूद हैं। पर्दा प्रथा से पुरुष का आधिपत्य बढ़ता गया और नारी चार दीवारों में सिमट कर रहने लगी। ऐसे महौल में मोहनदास करमचंद गांधी का जन्म हुआ था। 13 वर्ष की आयु में उनका विवाह 13 वर्ष की कस्तूरबाई से हो गया था। शुरू में तो वे एक पति के रूप में अपना अधिकार दिखाते रहते थे, लेकिन बाद में उन्होंने खुद स्वीकार किया कि उनकी जोहुकमी सहकर कस्तूरबाई वास्तव में अहिंसा का मूर्तिमंत उदाहरण बन गईं। बाद में तो कस्तूरबा ने सभी सत्याग्रहों में गांधीजी एवं अन्य सत्याग्रहियों के साथ सक्रिय हिस्सा लिया। उनके कारण अन्य महिलाएं भी जुड़ती गईं।

दक्षिण अफ्रीका की वर्ष 1913 की यह घटना शायद सभी जानते हैं, लेकिन उसे मैं दोहराना चाहती हूं। फिनिक्स बसाहट के रसोईघर में बा (कस्तूरबा) रोटी बेल रही थीं। गांधीजी रोटी सेक रहे थे। दूसरे दो साथी सब्जी काट रहे थे। तब गांधीजी ने कस्तूरबा से पूछा, तुमने सुना? बा ने पूछा क्या सुना? गांधीजी बोले, आज से तुम मेरी रखैल हो, धर्मपत्नी नहीं। बा चौंक कर बोल उठी। ऐसी अपशगुन वाली बात क्यों करते हो? तब गांधीजी ने समझाया कि सर्ल नाम के एक न्यायधीश ने कहा है कि जो शादियां चर्च में की गईं हों या अदालत में रजिस्टर की गईं हों वही वैध मानी जाएंगी।

यह बड़ी चिंता की बात थी। इसका विरोध करना आवश्यक था। कस्तूरबा ने सत्याग्रह करने की पहल की। उनके साथ और महिलाएं भी चल

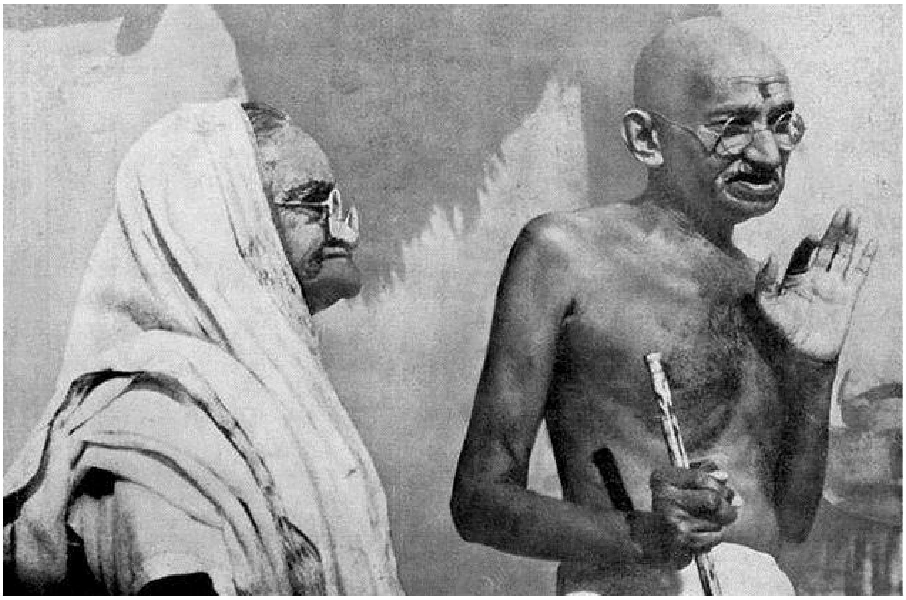

पड़ीं। देखा जाए तो यह पहला अहिंसक सत्याग्रह था और उसका नेतृत्व कस्तूरबा ने किया था। उन्हें गिरफ्तार किया गया था, बंदी भी बनाया गया। लेकिन परिणामस्वरूप विवाह का वह कानून रद्द हुआ। गांधीजी ने कस्तूरबा को सत्याग्रह की कला और विज्ञान में अपने गुरु का स्थान दिया था।

गांधीजी और कस्तूरबा 9 जनवरी 1915 के दिन जब हिंदुस्तान लौटे तब यहां भी महिलाओं को पर्दे से तथा घर की चार दीवारी से बाहर लाने की आवश्यकता थी। गांधीजी हमेशा कहते थे कि नारी अहिंसा का अवतार है। अहिंसा यानी अपार स्नेह, दुःख सहने की अपार क्षमता।

1930 के नामक सत्याग्रह और 1942 के 'भारत छोड़ो' आंदोलन में हजारों की तादात में महिलाओं ने हिस्सा लिया। हालांकि 12 मार्च को जब गांधीजी ने साबरमती आश्रम से दांडी के समुद्र तट पर पहुंच कर 6 अप्रेल की सुबह को नमक का कानून भंग करने के लिए प्रस्थान किया था तब उनके साथ 79 सत्याग्रही थे उनमें एक भी महिला नहीं थी। यह बात महिलाओं को पसंद नहीं आई। उन्होंने गांधीजी से पूछा कि उनको दांडीकूच में क्यों नहीं शामिल किया जा रहा है? तब गांधीजी ने कहा कि महिलाओं को साथ लेने से अंग्रेज यह समझेंगे कि हम उनका ढाल के रूप में उपयोग कर रहे हैं। सरोजनी नायडू को यह तर्क मंजूर नहीं था। उन्होंने ज़िद करके गांधीजी से बीच रास्ते अनुमति ले ली और महिलाएं दांडीकूच में शामिल हुईं।

कूच के रास्ते में धरासणा नाम का एक गांव आया। एक सार्जन्ट ने सरोजनी नायडू को वहां रोका और कहा, आपको आगे जाने का ऑर्डर नहीं है। सरोजिनी ने हिम्मत से कहा, और हमें पीछे जाने का ऑर्डर नहीं है। सार्जन्ट बोला, ठीक है यहीं खड़े रहो। 27 घंटों तक यहीं खड़ी रहो। कुछ घंटों बाद सार्जन्ट ने कुर्सियां मंगवाई और उनको बैठने के लिए कहा। सरोजिनी नहीं बैठी। 27 घंटों वहीं खड़ी रही। बाद में अपने कैम्प में कुछ समय बिता कर वहां लौट आई। उनके आते ही सार्जन्ट ने उनको गिरफ्तार कर लिया।

यह तो मैंने एक नारी का उदाहरण दिया। देश भर में ऐसी सैकड़ों, हजारों महिलाएं थीं। प्रत्येक की अपनी प्रेरणादायक कहानी है।

एक और किस्सा मैंने एक गुजराती पुस्तक में पढ़ा था। पुस्तक का नाम है 'पारसमणि ना स्पर्श'। पुस्तक की लेखिका हैं लाभूबेन महेता। पारसमणि के स्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता है। इस पुस्तक में ऐसे पंद्रह लोगों की बात है जिनका जीवन गांधीजी के संपर्क में आने के बाद पूरी तरह से बदल गया। लाभूबेन स्वयं जब 15 वर्ष की भी नहीं थी तब नमक सत्याग्रह के दौरान बंदी बनाई गई थीं।

इस पुस्तक में दर्ज लाभूबेन की गोशीबेन कैप्टन नाम की एक पारसी महिला से की हुई बातचीत को संक्षिप्त में सुनाती हूं। गोशीबेन अमीर परिवार की थीं, नर्म रेशमीन वस्त्र पहनती थीं, विदेश में पढ़ाई की थी। भारत के एक

वर्ष 1915 में गांधीजी भारत लौट आए। यहां एक पारसी मिल मालिक, दानवीर और गांधीजी के शुभेच्छु जहांगीर पीटीट के घर में गोशीबेन गांधीजी से फिर मिली। पारसमणि का स्पर्श हो गया। गोशीबेन अपनी बहनें पेरिन और नरगिस के साथ गांधीजी द्वारा आयोजित एवं चिन्हित विभिन्न गतिविधियों में हिस्सा लेने लगीं। गांधीजी ने उन्हें विदेशी वस्त्रों और शराब की दुकानों पर पिकेटिंग करने का काम सौंपा। इन बहनों ने बाद में आठ सौ महिलाओं को अपने साथ लेकर एक अहिंसक सेवा का समूह बना लिया।

सुविख्यात उद्योगपति एवं दानवीर जमशेदजी टाटा के उनके लंदन के घर में गोशीबेन गांधीजी से पहली बार मिली थीं। जमशेदजी टाटा अपने लंदन के घर में हर साल, पतेती के दिन, जो पारसियों का नया साल होता है, लंदन में बसे हुए भारतीयों को दावत देते थे। गांधीजी किसी कार्यवश दक्षिण अफ्रीका से लंदन आए हुए थे, तो उनको भी निमंत्रण मिला। उन्होंने अपना पाश्चात्य पोशाक पहन रखा था। गोशीबेन को वे काफी स्मार्ट लगे। गांधीजी ने गोशीबेन से दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह में सक्रिय हिस्सा लेने के लिए कहा। गोशीबेन ने कहा कि मोहनदास गांधी जब भारत में काम करेंगे तब वह उनके काम से अवश्य जुड़ेगी।

वर्ष 1915 में गांधीजी भारत लौट आए। यहां एक पारसी मिल मालिक, दानवीर और गांधीजी के शुभेच्छु जहांगीर पीटीट के घर में गोशीबेन गांधीजी से फिर मिली। पारसमणि का स्पर्श हो गया। गोशीबेन अपनी बहनें पेरिन और नरगिस के साथ गांधीजी द्वारा आयोजित एवं चिन्हित विभिन्न गतिविधियों में हिस्सा लेने लगीं। गांधीजी ने उन्हें विदेशी वस्त्रों और शराब की दुकानों पर पिकेटिंग करने का काम सौंपा। इन बहनों ने बाद में आठ सौ महिलाओं को अपने साथ लेकर एक अहिंसक सेवा का समूह बना लिया।

गोशीबेन ने उस समय की एक घटना सुनाई। शहर में कहीं एक पठान एक कुत्ते को मार रहा था। वहां तैनात एक पुलिस के सिपाही ने उसे रोकने की कोशिश की लेकिन उसने पुलिस की बात नहीं सुनी। दोनों आपस में लड़ने लगे। धीरे-धीरे पठान के पक्ष में उसके मुस्लिम साथी और पुलिस की सहायता करने के लिए और सिपाही आ पहुंचे। यह खबर इन बहनों के कार्यालय में पहुंच गई। मौके पर जाकर उन सबको शांत करने के लिए पेरिनबेन तुरंत खड़ी हो गई, गोशीबेन भी उनके साथ चल पड़ी।

वहां पहुंच कर देखा तो स्थानीय पुलिस कहीं छुप गई थी, उनकी जगह सैनिकों ने ली थी। मुसलमान लड़के छोटे-छोटे गुट बना कर पठान की ओर से लड़ने के लिए खड़े हो गये थे। पेरिनबेन और गोशीबेन हिम्मत से उन लड़कों के पास गईं और उनको नर्मी से समझाते हुए कहा, देखो भाई, ये अंग्रेज तो हमें मारने के लिए तैयार बैठे हैं। आप लोग आपस में इस तरह लड़ोगे तो वे हमें खतम कर डालेंगे। आप सब हमारे भाई हैं। हमारी बात मेहरबानी करके मान लीजिए। उन लड़कों ने थोड़ी फुसफुसाहट से आपस में बात की और कहा, हां इनकी बात सही है। ये हमारी बहनें हैं। वे चाहती हैं कि हम यहां से चले जाएं तो हम चले जाते हैं। और वे लड़के चले गये, सेना के सैनिक भी चले गये। सब कुछ शांत हो गया।

महिलाओं की निडरता का, उनके सशक्तिकरण का यह बड़ा प्रभावी उदाहरण है।

गांधीजी वास्तव में पारसमणि थे। उनका दिखाया हुआ प्यार और अहिंसा का मार्ग अमन का मार्ग है, सहअस्तित्व और संवादिता का मार्ग है। उस पर विश्वास और दृडता से चलते रहना हमारा दायित्व है। कस्तूरबा की और आज़ादी के आंदोलन के समय की अन्य महिलाओं की बात हम केवल इतिहास को दोहराने के लिए नहीं करते हैं। उनके जीवन और कार्य से हमें जीवन मूल्यों को समझने की, उन्हें अपने व्यवहार में लाने की प्रेरणा मिलती है। क्यों न हम उसका कुछ अंश अपने विचार, वाणी और व्यवहार में शामिल करें तथा को भी प्रेरित करें। ❑

कला शिक्षण जरूरी

शिक्षक रही चित्रकार एवं लेखिका अन्नपूर्णा जी संस्कारवान पीढ़ी के विकास के लिए प्राथमिक विद्यालयों में कला शिक्षा को अनिवार्य बनाने की इस आलेख में वकालत कर रही हैं। सं.

डॉ. अन्नपूर्णा शुक्ला

ललित कलाएं बच्चों के व्यतित्व के विकास में सहयोगी होतीं हैं। कला शांत भाव से युवाओं के मन को स्थाईत्व देती है। वह एक ऐसा सृजनात्मक जादू है जो हमारी रगों में वैसा जोश पैदा करता है जो कभी प्रागैतिहासिक शैल खण्डों, अजन्ता, एलोरा, एलीफैन्टा के रचनाकारों में पैदा हुआ होगा।

हमारी युवा पीढ़ी का दुर्भाग्य यह है कि हम उनको सही दिशा-निर्देशन नहीं मिल रहा हैं। कला की बुनियादी शिक्षा का ही हनन कर दिया गया है। जिस देश में बुनियादी स्तर पर कला विषय ही नहीं रखा गया हो वहां बच्चों की सृजनात्मकता कैसे बढ़ेगी? कैसे विकास होगा उनकी अन्तर्दष्टि का? ऐसे बहुत से प्रश्न है हमारे मन में उठाते हैं।

महात्मा गांधी, विवेकानन्द तथा अनेक विद्वानों ने कहा है कि बुनियादी शिक्षा मजबूत होनी चाहिए। इसे विज्ञान भी प्रमाणित करता है और मनोविज्ञान भी। फ्रायड,युंग और एडल, आदि यह कहते है कि हर बच्चें का कलात्मक विकास होना चाहिए! कला शिक्षण की अनिवार्यता जीवन की अनिवार्यता मानी जानी चाहिए। रुसी चित्रकार 'ब्लूलोव' कहते है कि ''कला का प्रादुर्भाव बालक के प्रादुर्भाव के साथ होता है।''

कला एक विषय मात्र न होकर सम्पूर्ण व्यक्ति को संवारने का काम करती है। उसकी सृजन प्रक्रिया सौन्दर्य परक हो जाती है। कला शिक्षण से मात्र बच्चे की सृजनात्मकता का विकास ही नहीं होता बल्कि उसमें इन प्रारम्भिक वय में सौन्दर्य बोध या सृजनात्मकता के बीज उसके अन्तर्मन में समा जाते हैं वह सदैव उसकी दृष्टि को पुष्पित और पल्लवित कर कलात्मक दृष्टि में परिवर्तित करते रहते हैं और वह जीवन पर्यन्त कला को हर विषय के साथ जोड़ कर उस के मूल सौन्दर्य का रसास्वादन करता रहता है।

कला आत्मिक सौन्दर्य को निखारती है इसलिए बुनियादी शिक्षण में उसकी अनिवार्यता अति आवश्यक है।

कला एक विषय नहीं है, वह एक पाठ्यक्रम भी नहीं है। कला तो जीवन को संचालित करती है। वह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में मानव मात्र के साथ स्थायित्व पाती है। कला विषय मात्र परीक्षा में नम्बर लाने का माध्यम नहीं है। वह तो जन्म से लेकर मृत्यपर्यन्त एक सौन्दर्य परक यात्रा है। इसलिए कला की उपेक्षा सहज जीवन की उपेक्षा है। यह ऐसे समय और भी महत्वपूर्ण होती है जब बच्चा कोरा कागज होता है।

हमारे प्रारम्भिक विद्यालयों के संचालकों की हीन दृष्टि का परिणाम है कि वहां कला शिक्षा का समुचित विकास नहीं हुआ है। विद्यालयों में कला विषय के पाठ्यक्रम को दशकों से महत्वहीन दर्जा दिया हुआ है। फिर बच्चों की क्या गलती? हमारे विद्यालय ही उनको सौन्दर्य से विमुख कर रहे हैं तो उनकी अभिव्यक्ति सौन्दर्य परक कहां से बन पायेगी? आगे संस्कारहीनता ही आएगी।

भले ही गांधी, टॉलस्टोय, नन्दलाल बसु, टैगोर, अन्य मनोवैज्ञानिक या शिक्षाविद कहते रहे कि कला एक विषय न होकर सम्पूर्ण जीवन का सौन्दर्य है, सुन्दर संयोजन है, लेकिन उनकी बात कौन किसने मानी? वेद-पुराण तो पुरानी बात हैं आधुनिक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने भी स्पष्ट कहा है कि कला सृजन प्रक्रिया को गुम्फित कर परमानन्द की अनुभूति कराती है।

हमें शिक्षण की नींव को मजबूत बनाना होगा, तभी दिशाहीन होता युवा पीढ़ी संवेदशील और आस्थावादी समाज को एक नवीन दृष्टि दे सकेगी। ❑

जोधपुर विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर रहे लेखक इस आलेख में अपने गुरु को शिद्दत से याद कर रहे हैं। सं.

अब वे बिरछ कहां जिन कर छाँह गंभीर!

❑

वे रहीम अब बिरछ कहां, जिनकर छाँह गंभीर/ बागन बिच बिच सेंहुड़ कुटज करीर। ऐसा ही कुछ लगता है जब मैं अपने कॉलेज के गुरु श्रीलाल औदीच्य का पुण्य स्मरण करता हूं। उनसे बिछुड़े हुए लगभग साढ़े पांच दशक होने को आये हैं किन्तु उनके वरद हस्त के आशीर्वाद से वंचित होने की कसक में कोई कमी नहीं आयी है।

एक शिक्षक की सफलता व सार्थकता इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपने विद्यार्थियों में निहित प्रतिभा को उजागर करने में कितना सफल हो पाता है। औदीच्य साहब अपने विद्यार्थियों की क्षमता को पहिचान कर उसे संवर्धित करने में लासानी थे। देहाती क्षेत्र के विद्यार्थियों के लिये उनके मन में विशेष अनुकंपा थी।

अपने अध्यापन कर्म के प्रति उनकी निष्ठा अनुपम थी। चूंकि वे विश्वविद्यालय की अनेक समितियों के सदस्य थे अतः उन्होंने कुलपति महोदय से यह कह रखा था कि कोई भी मीटिंग दिन में तीन बजे बाद रखें क्योंकि एक से तीन बजे के दरम्यान उनका अध्यापन का कार्य होता है। अब तो ऐसी कर्तव्यनिष्ठा निजंधरी कथा ही लगेगी।

उनका अध्यापन कौशल, अंग्रेजी व हिन्दी दोनों भाषाओं में उनका पांडित्य ऐसा था कि उन्हें सुनने के लिये एक बारगी हवा भी थम जाए। राजनीति विज्ञान और विशेषकर राजनीति दर्शन में उनकी कितनी गहरी पैठ थी, इसका अनुमान इस बात से ही लगाया जा सकता है कि पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन वाला अध्याय पढ़ते समय प्लेटों पर उसके गुरु सुकरात के गहरे प्रभाव का दिग्दर्शन कराने वाले प्रो. मेक्सी के इस कथन कि इन प्लेटों सोक्रेटीज़ लिव्डअगैन की व्याख्या करने के लिये उन्होंने पौन-पौन घंटे के पांच व्याख्यान दिये।

उनका पहनावा और वक़्त की पाबंदी, दोनों पूरे जोधपुर विश्वविद्यालय में अतुलनीय थी। वे अक्सर कहा करते थे कि वक़्त का पाबंद न होना मानसिक फूहड़पन है।

❑

डॉ. कन्हैयालाल खांडपकर

वर्ष 1967 में हमारे साथ ही प्रथम श्रेणी में एम.ए. करने वाले अपने अनुज केशव को उन्होंने विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के व्याख्याताओं के लिए निकली भर्ती के लिए आवेदन करने से इसलिए मना कर दिया कि गलती से भी तुम्हारा चयन हो गया तो लोग यही कहेंगे कि औदीच्य ने अपने भाई का चयन करवा दिया।

दुर्भाग्य से वे 50 वर्ष की अल्पायु में ही स्वर्ग सिधार गये। यह दुर्घटना राजनीति विज्ञान विभाग के लिए तो मरणांतक आघात था क्योंकि उनके निधन के बाद जिनके हाथों में विभाग की बागडोर आयी उनके लिए यह शेर काफी है अज़मत अपने चिरागों की बचाने के लिये/ हम किसी घर में उजाला होने नहीं देते। औदीच्य साहब का विभागाध्यक्ष और आचार्य के रूप में कार्यकाल यही कहना पर्याप्त है कि जब तक वे थे बाग के माली फूलों पे रानाई थी/ गोशा गोशा महक रहा था हरी-भरी अंगनाई थी।

मेरे अध्यापन काल का पहिला ही वर्ष था (1967-68)। मुझे बी.ए. प्रथम वर्ष में राजनीति विज्ञान के मूल सिद्धांत विषय पढ़ाने की जिम्मेदारी सौंपी गई। इस विषय पर औदीच्य साहब की अत्यंत उत्कृष्ट पुस्तक मेरे लिए मार्गदर्शक थी। सत्रावसान के पश्चात् उन्होंने मुझ से मेरी राय पूछी। क्योंकि पुस्तक बहुत ही अच्छी थी इसलिए मेरा उत्तर सकारात्मक था। मगर उन्होंने कहा कि थोड़ी देर के लिए यह भूल जाओ कि तुम मेरे शिष्य हो और कहो। साथ ही यह भी कहा कि देअर इस आलवेज़ अ स्कोप फॉर इम्प्रूवमेंट (सुधार की हमेशा गुंजाइश रहती है)। तब मैंने अपनी समझ के अनुसार विस्तृत रूप से अपने सुझाव उन्हें लिख कर दिये जिन्हें पढ़ कर उन्होंने न केवल प्रशंसा की बल्कि बोले इस पुस्तक का अगला संस्करण तुम्हारी मेरी को-ऑथरशिप (सहलेखन) में आएगा। मैं तो अवाक् रह गया।

श्रीलाल औदीच्य

अपने विद्यार्थियों का हितचिंतन उनके लिये प्राणवायु की भांति था। पिछली सदी के पांचवें दशक के संध्याकाल की बात है। मुस्लिम समुदाय के उनके एक विद्यार्थी थे फिरोज़ खां। पढ़ने में जहीन। औदीच्य साहब ने उन्हें राजस्थान लोक सेवा आयोग की प्रतियोगी परीक्षा देने का मशविरा दिया। मगर फिरोज़ खान ने फीस के पैसे नहीं होने के कारण असमर्थता जताई। इस शिक्षक ने तुरंत अपने पास से पैसे दिये, फॉर्म भरवाया और मार्गदर्शन दिया। विद्यार्थी का राजस्थान पुलिस सेवा में चयन हो गया और बाद में भारतीय पुलिस सेवा में उसकी पदोन्नति भी हुई और वे डीआईजी पद से सेवानिवृत्त हुए। इसी प्रकार उनके एक अन्य विद्यार्थी जालोर जिले के ग्रामीण क्षेत्र के उम्मेदराम का एम. ए. प्रथम श्रेणी में पास होने के बाद पुलिस उप-निरीक्षक (थानेदार) पद पर चयन हो गया। विद्यार्थी खुशी-खुशी यह सूचना देने औदीच्य साहब के पास गया। वे उसकी क्षमता जानते थे। उन्होंने यह कहते हुए कि अभी नौकरी पर मत लगो और आगे की तैयारी करो उसका नियुक्ति पत्र अपने पास रख लिया। उम्मेदराम का बाद में राजस्थान लोक सेवा आयोग से राजस्थान पुलिस सेवा में चयन हो गया और बाद में आईपीएस कैडर में पुलिस महानिरीक्षक पद से सेवा निवृत्त हुए।

यांत्रिक तरीके से पाठ्यक्रम पूरा कराने का जैसा आज का चलन है उनका ऐसी कार्यशैली से कोई वास्ता नहीं था। वे विद्यार्थियों को पुस्तकालय का अधिकाधिक लाभ उठाने को सदैव प्रेरित करते थे। इंडियन काउंसिल ऑफ वर्ल्ड अफ़ेयर्स के जोधपुर चेप्टर के अध्यक्ष के नाते हर शैक्षणिक सत्र में वे नामी-गिरामी सांसदों, विद्वानों के व्याख्यानों का आयोजन करवा के हमें प्रबुद्धता के मार्ग के पथिक बनाते रहे। उनके नैतिक साहस का यह आलम था कि उस ज़माने में विश्वविद्यालय में जातिगत विद्वेष के फलस्वरूप होने वाली खूनी झड़पों पर अपनी उपस्थिति से ही वे विराम लगवा देते थे।

आत्मकेंद्रित, समाजविमुखता वाली वर्तमान जीवन शैली के विपरीत उनका जीवन दर्शन तो यह था कुछ मेरे बाद और भी आएंगे काफिले/कांटे ये रास्ते से हटा लूं तो चैन लूं।❑

पर्यावरण शिक्षण – समिति की पहल

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति ने पर्यावरण शिक्षण के लिए स्कूलों के विद्यार्थियों के साथ संवाद कार्यक्रम शुरू किया है। इसकी शुरुआत 24 जुलाई को जयपुर के निकट झालाना स्थित महात्मा गांधी राजकीय माध्यमिक विद्यालय से की गई। कार्यक्रम में स्कूल के विद्यार्थियों तथा शिक्षकों को वृक्षों को बचाने के साथ पौधों को लगाने की विधि सिखाई गई और प्राकृतिक खाद बनाना

और उसका उपयोग सिखाया गया। समिति के सदस्य राज्य की वन सेवा से निवृत्त अधिकारी देवेन्द्र भारद्वाज ने वैज्ञानिक जानकारियां बड़े ही दिलचस्प ढंग से दी। उन्होंने सभी को हड़जोड़

पौधे की कलमें सभी को बांटी जिसकी देखबाल की विशेष जरूरत नहीं रहती। आयुर्वेद में इस पौधे का उपयोग दूध के साथ सेवन से टूटी हड्डियां जोड़ने के इलाज में होता है। इस अवसर पर समिति की बटीना मलिक ने समिति के बारे में जानकारी दी और नवसाक्षार साहित्य की किताबों का एक सेट विद्यालय के पुस्तकालय को भेंट किया। कार्यक्रम के संयोजन में समिति के दिलीप शर्मा की भागीदारी भी रही। ❑

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा क्लासीफाइड प्रिण्टर्स, जयपुर में मुद्रित तथा 7-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-302004 से प्रकाशित। संपादक- राजेन्द्र बोड़ा

अनौपचारिका: पृष्ठ-28, अगस्त, 2025 रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नयी दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x

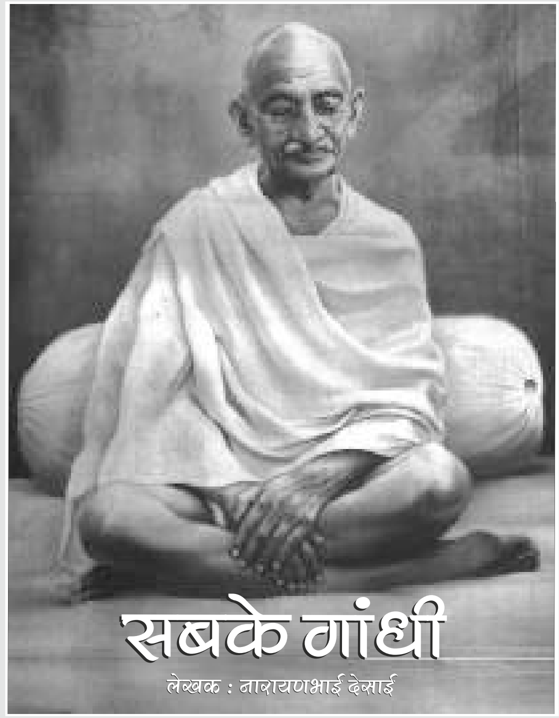

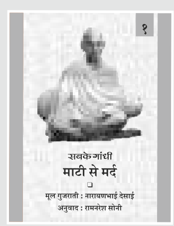

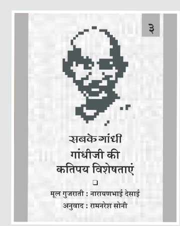

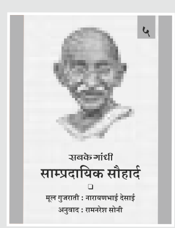

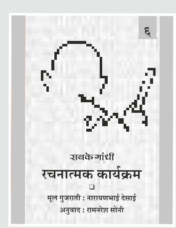

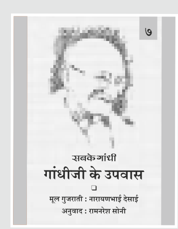

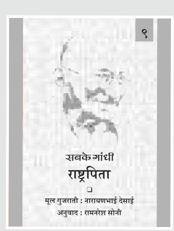

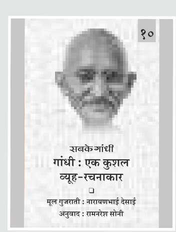

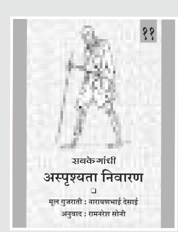

सबके गांधी

सहयोग राशि के लिए
बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH
(Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7—ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर—302004

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7—ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर—302004

12 पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रुपये 500/– मात्र डाक खर्च अलग से देय होगा।